दैनिक जागरण

पराजय से मनुष्य खत्म नहीं होता-मैदान छोड़ने से होता है

गिरावट का सिलसिला

वर्तमान वित्त वर्ष की दूसरी तिमाही के आर्थिक विकास दर के आंकड़े निराश करने वाले तो हैं, लेकिन उनसे हैरानी इसलिए नहीं, क्योंकि कुछ ऐसा ही होने का अंदेशा था। यह अंदेशा तभी उभर आया था जब पहली तिमाही की आर्थिक विकास दर पांच प्रतिशत पर आ टिकी थी। वास्तव में तभी स्पष्ट हो गया था कि अगली तिमाही में भी आर्थिक विकास दर में गिरावट का सिलसिला कायम रहने वाला है। जुलाई-सितंबर माह की 4.5 प्रतिशत जीडीपी दर बीते छह वर्षों में सबसे कम है। इतनी कम विकास दर इसलिए सरकार की चिंता बढ़ाने वाली है, क्योंकि अनुमान यह लगाया था कि विकास दर 4.7 प्रतिशत रह सकती है। अनुमान से भी अधिक गिरावट के बाद सरकार पर ऐसे कदम उठाने का और अधिक दबाव होगा जिनसे विकास दर में गिरावट का सिलसिला थमे। इस दबाव के बावजूद इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि सरकार ने अर्थव्यवस्था की सेहत सुधारने के लिए जो कदम उठाने शुरू किए उनका असर आनन-फानन नहीं हो सकता। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसकी ओर से ये कदम उठाने की शुरुआत ही तब हुई जब दूसरी तिमाही खत्म होने वाली थी। इसकी संभावना है कि सरकार के इन कदमों के साथ त्योहारी खरीद का सकारात्मक असर अगली तिमाही के आंकड़ों में दिखेगा, लेकिन इसके बावजूद अर्थव्यवस्था के फिर से पटरी पर आने में और वक्त लग सकता है। इसकी बड़ी वजह मैन्यूफैक्चरिंग के साथ कृषि क्षेत्र का खराब प्रदर्शन है। यह सामान्य बात नहीं पिछले साल के मुकाबले इस साल कृषि विकास दर लगभग आधी रह गई है।

आर्थिक सुस्ती के कारण किसी से छिपे नहीं। इन कारणों में सबसे चिंताजनक यह तथ्य सामने आना है कि उपभोक्ता खर्च कम हो रहा है। यह कमी शहरी और ग्रामीण, दोनों क्षेत्रों में हो रही है। इसका मतलब है कि लोग भविष्य को लेकर आशंकित हैं और बचत करना पसंद कर रहे हैं। इससे इन्कार नहीं कि बीते दो-तीन महीनों में सरकार एक के बाद एक करीब दो दर्जन कदम उठा चुकी है और इनमें कुछ कदम ऐसे रहे जिन्हें क्रांतिकारी कहा गया, जैसे कॉरपोरेट दरों में व्यापक कटौती। इस कटौती से कॉरपोरेट जगत को प्रोत्साहन तो मिला है, लेकिन इस तथ्य को ओझल नहीं कर सकते कि अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए जो भी कदम उठाए गए हैं वे आपूर्ति बढ़ाने वाले हैं। ऐसे में सरकार को कुछ ऐसे भी उपाय करने चाहिए जिससे मांग बढ़े। यह तभी होगा जब उपभोक्ता अपना खर्च बढ़ाएंगे। उचित होगा कि कॉरपोरेट टैक्स में कटौती के बाद व्यक्तिगत आयकर दरों में कटौती करने के साथ अन्य वे उपाय किए जाएं जिससे लोग अपनी खपत बढ़ाएं।

उचित बदलाव

ग्राम पंचायत के मुख्यालय गांव में ही पंचायत सरकार भवन बनाने की अनिवार्यता समाप्त कर बिहार सरकार ने उचित कदम उठाया है। सुशासन की संकल्पना के एकीकृत केंद्रबिंदु के रूप में कार्य करने वाले इस भवन के निर्माण में जमीन की उपलब्धता बड़ी बाधा बनी हुई थी। पंचायती राज विभाग ने नीतिगत बदलाव करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि अगर पंचायत के मुख्यालय गांव में जमीन नहीं मिली तो अधिक जनसंख्या वाले राजस्व ग्राम को प्राथमिकता दी जाएगी। शर्तों में ढील भी दी गई है। जाहिर है सरकार का उद्देश्य साफ है कि राज्य की सभी पंचायतों में पंचायत सरकार भवन का निर्माण हो जाए। सरकार की सोच है कि पंचायत के क्रियाकलापों के सफल कार्यान्वयन के लिए एक भवन का होना जरूरी है जो कार्यालय के रूप में काम करे। पंचायत सरकार भवन में पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों और पंचायत स्तर के सरकारी कर्मियों के लिए स्थान, ग्राम कचहरी के लिए न्यायालय कक्ष, अभिलेखों के संरक्षण के लिए स्थान, स्टोर, बैठकों के लिए हॉल, स्वागत कक्ष, कंप्यूटरीकृत सेवा केंद्र, रसोई एवं शौचालय की व्यवस्था रहेगी। पंचायत के लोग इस दोमंजिले भवन का बहुद्देशीय उपयोग कर सकेंगे। पंचायत में ही सेवा प्रदान करने के अलावा बाढ़ एवं अन्य आपदा में भी इसका उपयोग हो सकेगा। सभी पंचायतों में इस भवन के बनने के बाद सरकार आपके द्वार की सोच साकार हो सकेगी। यहां बिहार लोक सेवा अधिकार अधिनियम के तहत दी जाने वाली सेवाएं यथा जाति, आय और आवासीय प्रमाण पत्र की सेवा सुलभ होगी। आम लोगों को प्रखंड कार्यालय एवं बाबुओं का चक्कर नहीं लगाना पड़ेगा। पंचायत स्तर पर ही उन्हें यह सेवा मिल जाएगी। यहां तैनात कार्यपालक सहायक ही आवेदक को बीडीओ या सीओ द्वारा निर्गत प्रमाण पत्रों का प्रिंट उपलब्ध कराएंगे। अगर लोगों को दोबारा इसकी जरूरत होगी तो पहचान पत्र से पुष्टि कर उन्हें मुहैया कराया जाएगा। बहरहाल जरूरत है कि जनप्रतिनिधि एवं सरकारी मुलाजिम पूरे मनोयोग से जनसुविधाएं मुहैया कराएं तभी सरकार आपके द्वार की सोच का सपना साकार हो सकेगा।

पंचायत सरकार भवन के निर्माण से पंचायतों को कार्य संचालन में लोगों के प्रति जवाबदेह बनाने में तो मदद मिलेगी ही, साथ ही उनके कार्यकलाप भी पारदर्शी हो सकेंगे

संवैधानिक समानता का अधूरा लक्ष्य

शंकर शरण

संविधान दिवस मनाने के साथ ही यह भी समझा जाना चाहिए कि उसके सभी अनुच्छेद देश के सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू हों

कुछ समय से देश में समान नागरिक संहिता की चर्चा बार-बार हो रही है, लेकिन वह आगे नहीं बढ़ पा रही है। इसी तरह हिंदू मंदिरों को सरकारी कब्जे से मुक्त कराने की मांग भी अनुसनी बनी हुई है। छोटे-मोटे संगठन और एक्टिविस्ट धर्मांतरण के विरुद्ध कानून बनाने की भी मांग कर रहे हैं। भोजन उद्योग में हलाल मांस का दबाव बढ़ाने की संगठित गतिविधियों के विरुद्ध भी असंतोष बढ़ा है। शिक्षा अधिकार कानून में हिंदू-विरोधी पक्षपात पर भी काफी उद्वेलन है। आखिर इन मांगों पर सत्ताधारियों का क्या रुख है? समान नागरिक संहिता की चाह तो मूल संविधान में ही थी, लेकिन शासकों ने शुरू से इसे उपेक्षित किया। कई बार सुप्रीम कोर्ट के पूछने पर भी कार्रवाई नहीं की। समान संहिता की मांग हिंदू मुद्दा नहीं, बल्कि सेक्युलर मांग है। यह मांग तो सेक्युलरवादियों को करनी चाहिए। धर्मांतरण रोकना भी कानूनी प्रतिबंध का विषय नहीं। धर्मांतरण कराने में मिशनरी रणनीति और कटिबद्धता ऐसी है कि चीन जैसा कठोर शासन भी महज कानून से इसे रोकने में विफल रहा है। धर्मांतरण रोकने के आसान रास्ते की आस छोड़नी चाहिए। इसका उपाय शिक्षा और वैचारिक युद्ध में है। उससे कतरा कर संगठित धर्मांतरणकारियों से पार पाना असंभव है।

कुछ लोग जब-तब हिंदू राष्ट्र की बातें किया करते हैं, जबकि यथार्थवादी मांग यह होती कि हिंदुओं को दूसरे समुदायों जैसे बराबर अधिकार मिलें। दुर्भाग्यवश अधिकांश लोगों को इसकी चेतना नहीं। हालिया समय में संविधान के अनुच्छेद 25 से 31 की हिंदू-विरोधी व्याख्या स्थापित कर दी गई है। कई शैक्षिक, सांस्कृतिक, सामाजिक अधिकारों पर केवल गैर हिंदुओं यानी अल्पसंख्यकों का एकाधिकार बना दिया गया है। सरकार हिंदू शिक्षा संस्थान और मंदिरों पर मनचाहा हस्तक्षेप करती है और अपनी शर्तें लादती है। वह ऐसा गैर-हिंदू संस्थाओं पर नहीं करती। इसी तरह अल्पसंख्यकों को संवैधानिक उपचार पाने का दोहरा अधिकार है, जो हिंदुओं को नहीं है। हिंदू केवल नागरिक रूप में न्यायालय से कुछ मांग सकते हैं, जबकि अन्य नागरिक और अल्पसंख्यक, दोनों रूपों में संवैधानिक अधिकार रखते हैं। ऐसा अंधेर दुनिया के किसी लोकतंत्र में नहीं कि अल्पसंख्यक को ऐसे विशेषाधिकार हों जो अन्य को न मिलें। यह हमारे संविधान निर्माताओं की कल्पना न थी।

1970 के आसपास कांग्रेस-कम्युनिस्ट दुरभिसंधि और हिंदू संगठनों के निद्रामग्न होने से संविधान के अनुच्छेद 25 से 31 को मनमाना अर्थ दिया जाने लगा। संविधान की उद्देशिका में जबरन सेक्युलर शब्द जोड़ने से लेकर दिनों-दिन विविध अल्पसंख्यक संस्थान, आयोग, मंत्रालय आदि बना-बना कर अधिकाधिक सरकारी संसाधन मोड़ने जैसे अन्यायपूर्ण कार्य होते गए। विडंबना यह कि इनमें कुछ कार्य स्वयं हिंदूवादी कहलाने वाले नेताओं ने किए। वे केवल सत्ता कार्यालय, भवन, कुर्सी आदि की चाह में रहे। नीतियों में होते परिवर्तनों की दूरगामी मार पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत कम्युनिस्टों ने शिक्षा-संस्कृति की धारा पर कब्जा करने की कोशिश की, क्योंकि सामाजिक बदलाव के मूल स्रोत वही होती है। इसीलिए सत्ता पर काबिज हुए बिना भी कम्युनिस्टों ने देश की शिक्षा-संस्कृति पर वर्चस्व बनाया और हिंदू ज्ञान-परंपरा को बेदखल कर दिया। आज हिंदू धर्म-समाज डूबता जहाज समझा जाने लगा है, जिससे निकल कर ही जान बचाई जा सकती है। इन सच्चाइयों की अनदेखी कर अनेक हिंदुवादी खुद अपनी वाह-वाही करते हैं, किंतु हालिया दशकों में भारत में ही हिंदू धर्म का चित्रण जातिवादी, उत्पीड़क, दकियानूस आदि जैसा प्रचलित हुआ है। यही विदेशों में प्रतिध्वनित हुआ। किसी पार्टी की सत्ता बनने से इसमें अंतर नहीं पड़ा, यह विविध घटनाओं से देख सकते हैं। अयोध्या में राम-जन्मभूमि के लिए सदियों पुराने, सहज हिंदू संघर्ष की जितनी बदनामी पिछले तीन दशकों में हुई, वह पूरे इतिहास में कभी नहीं मिलती। सदैव दूसरों को दोष देना और अपनी भूल न देखना बचकानापन है। यहां ईसाई और इस्लामी दबदबा बढ़ने में उनके नेताओं का समर्पण और दूरदृष्टि भी कारण है। उन्होंने कुर्सी के लिए अपने धर्म-समाज के मूल हितों से कभी समझौता नहीं किया। यह न समझना आत्मप्रवंचना है।

अवधेश राजपूत

हिंदुओं को दूसरों के समान संवैधानिक अधिकार दिलाने की लड़ाई जरूरी है। इसमें दूसरे का कुछ नहीं छिनेगा। केवल हिंदुओं को भी वह मिलेगा, जो मुसलमानों, ईसाइयों को हासिल है। संविधान दिवस मनाने की अपील तो ठीक है, लेकिन यह समझा जाना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 25-31 को देश के सभी नागरिकों के लिए समान रूप से लागू करना आवश्यक। यह न केवल संविधान की मूल भावना के अनुरूप, बल्कि सहज न्याय है। हिंदुओं के हित की कुंजी अन्य धर्मावलंबियों जैसे समान अधिकार में है। स्वतंत्र भारत में हिंदू समाज का मान-सम्मान, क्षेत्र संकुचित होता गया है और यह प्रक्रिया चालू है।

धर्मांतरण रोकना सामाजिक काम है। भारत में यह आसान भी है। धर्मांतरण को समान धरातल पर लाना चाहिए। विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन-परीक्षण का वातावरण बनाना चाहिए। चूंकि ईसाइयत और इस्लाम धर्मांतरणकारी हैं, इसलिए वे विपरीत गमन का विरोध नहीं कर सकते। वस्तुतः पश्चिम में पिछली दो-तीन सदियों में एक विस्तृत श्रेष्ठ साहित्य तैयार हुआ जिसने ईसाइयत की कड़ी समीक्षा कर यूरोप को चर्च अंधविश्वासों से मुक्त कराया। फलतः वहां ईसाइयत में धर्मांतरण शून्यप्राय हो गए। उसी विमर्श को भारत लाकर यहां ईसाई मिशनों को ठंडा करना था, किंतु दुर्भाग्य से गांधीजी ने उस आलोचनात्मक विमर्श के बदले मिशनरी प्रचारों को ही आदर देकर ईसाइयों को 'अच्छा ईसाई' बनने का उपदेश दिया। फलतः यहां मिशनरी और जम गए। जबकि धर्मांतरण रोकने का रामबाण सभी धर्मों के वैचारिक दावों के खुले बौद्धिक परीक्षण में है। इसी से हिंदू, बौद्ध, सिख धर्म सुरक्षित होंगे, कानून बनाकर नहीं। तुलनात्मक धर्म अध्ययन और शोध को विषय के रूप में शिक्षा में स्थापित करना इस में उपयोगी होगा।

यह सब करना कोई हिंदू राष्ट्र बनाना नहीं, बल्कि हिंदू-विरोधी भेदभाव खत्म कर स्थिति सामान्य बनाना भर है। जैसे जम्मू-कश्मीर में धारा 370 हटाना सामान्यीकरण है, कोई हिंदू राज्य बनाना नहीं। इसी प्रकार अनुच्छेद 25-31 के व्यवहार में की गई विकृति को खत्म कर उसे सबके लिए बराबर घोषित करना एक सामान्यीकरण भर होगा। इसके बिना हिंदुओं के हितों पर दिनों-दिन चोट बढ़ती जाएगी।

(लेखक राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

पारदर्शिता से बचते राजनीतिक दल

जगदीप एस छोकर

देश में लोकतंत्र तभी ठीक से चल सकता है जब देश की राजनीति वास्तव में पारदर्शी बनेगी

चुनावी बांड संबंधी योजना एक बार फिर चर्चा में है। जहां सत्तापक्ष चुनावी बांड स्कीम को एक सही और साहसी कदम बता रहा है वहीं विपक्षी दल और स्वैच्छिक संस्थाएं इस योजना की कमियों और गलतियों की तरफ देश का ध्यान आकर्षित कर रही हैं। अगर इस सारी बहस को देखा जाए दो बातें तो स्पष्ट होती हैं। पहली यह कि यह योजना पारदर्शिता को आगे बढ़ाने के बजाय गोपनीयता को बढ़ावा देती है और दूसरी यह कि इसे जारी करने का तरीका ठीक नहीं था। तत्कालीन वित्त मंत्री अरुण जेटली ने जिस दिन संसद में बजट इस योजना का उल्लेख किया था उसी दिन एक संवाददाता सम्मेलन में कहा था कि चुनावी बांड के तहत पैसा देने वाले की पहचान गोपनीय रखी जाएगी। उनकी बात सही साबित हो रही है। इस स्कीम से पारदर्शिता नहीं बढ़ रही है। चंदे में पारदर्शिता एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए आवश्यक है। यह एक अजीब बात है कि सब राजनीतिक दल पारदर्शिता के बारे में बहुत बड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं, लेकिन जब उसे व्यावहारिक रूप से लागू करने का समय आता है तो बिना किसी भेदभाव के सभी दल एकजुट हो जाते हैं। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी कहती है कि पहले बाकी दल पारदर्शी हों, तब हम भी पारदर्शी हो जाएंगे।

यह भी कहा जाता है कि चुनाव लड़ने के लिए पैसे सरकार को देने चाहिए, जिसे स्टेट फंडिंग ऑफ इलेक्शन कहा जाता है। इसमें कई पेचीदगियां हैं। पहली तो यह कि सरकार जो पैसे देगी वे वास्तव में जनता के पैसे ही होंगे। अगर जनता को यह बताया जाए कि उसके पैसे उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिए दिए जाएंगे तो बहुत कम लोग इसके लिए तैयार होंगे। दूसरा मुद्दा है कि चुनावी खर्च के लिए कितना पैसा दिया जाए? इसका अनुमान लगाने के लिए यह जानना जरूरी है कि चुनाव पर सब मिलाकर कितनी राशि खर्च होती है ताकि उतनी या उससे कुछ अधिक राशि का बजट में प्रावधान किया जा सके। समस्या यह आती है कि कोई भी उम्मीदवार और राजनीतिक दल यह बताने को राजी नहीं है कि उसने वास्तव में कितने पैसे खर्च किए? तीसरा मुद्दा है कि अगर उम्मीदवारों और राजनीतिक दलों को चुनाव लड़ने के लिए जनता के पैसे दिए जाएंगे तो फिर उनको कहीं और से पैसे लेने की अनुमति नहीं होगी। इसके लिए कोई राजनीतिक दल राजी नहीं है। घूम-फिर कर बात वहीं आती है कि दलों को यह सार्वजनिक करना होगा कि उनको कितने पैसे मिले और कहां से? जब तक यह नहीं होता तब तक चुनावी और राजनीतिक चंदों में पारदर्शिता की बात करना सरासर निरर्थक है।

इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता लाने के प्रयत्नों का सभी राजनीतिक दलों ने पुरजोर विरोध ही किया है। इसका एक ठोस प्रमाण है तमाम राजनीतिक दलों द्वारा केंद्रीय सूचना आयोग के वर्ष 2013 के निर्णय की खुलेआम अवहेलना करना। तीन जून 2013 को केंद्रीय सूचना आयोग ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया था कि छह राष्ट्रीय राजनीतिक दल (भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी) सूचना अधिकार अधिनियम के अंतर्गत पब्लिक अथॉरिटी हैं। उन्हें सार्वजनिक सूचना अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए और सूचना अधिकार के अंतर्गत मांगी गई सूचनाएं जनता को देनी चाहिए, लेकिन इन सभी दलों ने इस निर्णय को मानने से इन्कार कर दिया। अब यह मामला उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है।

देश में लोकतंत्र तभी ठीक से चल सकता है जब देश की राजनीति स्वच्छ हो। राजनीति स्वच्छ होने के लिए राजनीति में वास्तविक पारदर्शिता अनिवार्य है। इसके लिए राजनीतिक दलों और राजनीतिक नेताओं को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। इसका एक उपाय राजनीतिक दलों पर सूचना अधिकार अधिनियम लागू करना हो सकता है। जब तक यह नहीं होता तब तक आधे मन से किए गए उपाय या फिर गोपनीयता कायम रखने वाले चुनावी बांड योजना से कुछ लाभ नहीं होगा। इससे तो केवल सत्तारूढ़ दल ही मजबूत होंगे।

(लेखक आइआइएम अहमदाबाद में प्रोफेसर, डीन एवं डायरेक्टर इंचार्ज रहे हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आत्मज

आत्मज, पुत्र और संतान एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। संस्कृत भाषा में इन शब्दों की व्याख्या जिस रूप में की गई है, उससे यह इंगित होता है कि किसी भी माता-पिता के द्वारा अपने बेटों के लिए कहे गए ये शब्द अपनी अर्थ सार्थकता से भारतीय संस्कृति के एक बड़े आयाम को प्रकट भी करते हैं। जैसे कि आत्मज शब्द के लिए यह बताया गया है कि पिता स्वयं आत्मरूप में आत्मज में जन्मता है इसीलिए इसे आत्मज कहा जाता है। इसी तरह से पुत्र के लिए यह कहा गया कि जो नरक से पिता को त्राण देता है अर्थात बचाता है वह पुत्र है। संतान से अभिप्राय यह है कि जो वंश को अपनी आगे आने वाली पीढ़ी की संतान देकर निरंतरता देता है वह संतान है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरित मानस में दशरथ पुत्र श्रीराम तथा जनकपुत्री के लिए बड़े ही विस्मयकारी विशेषण दिए हैं। मिथिलापुरी में विवाह मंडप के नीचे बैठे हुए श्रीराम तथा मां मैथली के विषय में उन्होंने कहा है कि 'दशरथ सुकृत राम धरि देही।' अर्थात महाराज दशरथ के जीवन के जो सुकृत हैं, वही शरीर धारण करके यहां राम रूप में अवतरित हैं और इसी तरह से महाराज जनक के जीवन के जो सुकृत हैं, उनके वही सुकृत आज मूर्तिमंत होकर मां मैथिली के रूप में यहां उपस्थित हैं। अर्थात पुत्र और पुत्री अन्य कोई न होकर हमारे अपने जीवन के किए गए सुकृत फल ही हैं।

इस समय हम इसलिए प्रसन्नता का अनुभव करते हैं कि आर्थिक दृष्टि से एक बड़ी शक्ति बन गए हैं। किंतु जैसे-जैसे हमारी आर्थिक संपन्नता बढ़ी है, वैसे-वैसे ही हमारी मानवीय संवेदनाएं क्षीण भी हुई हैं। यही कारण है कि आज बहुतायत की संख्या में माता-पिता या तो संकोचवश घर में रहकर अपनी ही संतानों के उत्पीड़न को बर्दाश्त कर रहे हैं अथवा अपने भरण-पोषण के अधिकार की याचना करते हुए न्यायालयों के चक्कर लगा रहे हैं और दोष नई पीढ़ी को दे रहे हैं। किंतु हमारी परंपरा जब यह कह रही है कि आत्मजों के रूप में हमारे सुकृत ही हमारे सामने हैं तो हमें अपने जीवन में सजग होकर सुकृत का आचरण ही करना चाहिए।

डॉ. गदाधर त्रिपाठी

तथ्य-कथ्य | उभरती अर्थव्यवस्था वाले देशों में सोशल मीडिया के उपयोगकर्ता

स्रोत: विश्व बैंक

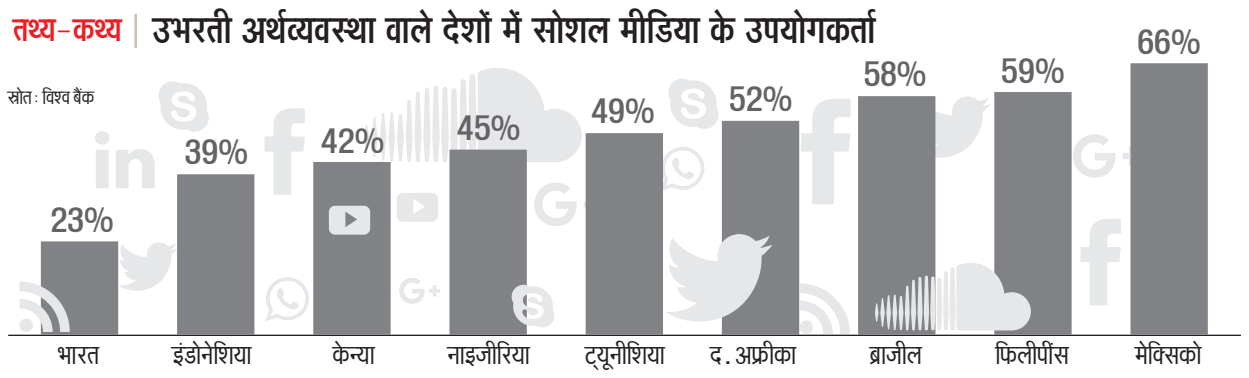

खाद्य पदार्थों की बर्बादी

डॉ. मोनिका शर्मा

अफसोस कि आजादी के बाद से देश में सरकारें आती जाती रहीं, पर अनाज की बर्बादी को नहीं रोका जा सका

हाल में सरकारी गोदाम में रखा 32 हजार टन प्याज सड़ गया। खुद केंद्रीय उपभोक्ता मंत्री ने बताया है कि 65,000 टन प्याज के बफर स्टॉक में से 50 फीसद प्याज खराब हो गया है। अफसोसनाक है कि एक ओर प्याज सड़ रहा है तो दूसरी ओर बाजार में प्याज की कीमतें आसमान छू रही हैं। आम लोगों के लिए प्याज खरीदना बजट बिगाड़ने वाला साबित हो रहा है। यह आमजन को हैरान-परेशान ही नहीं लाचार महसूस करवाने वाली स्थिति है।

यह पहली बार नहीं है जब गोदाम में रखा कोई खाद्य पदार्थ सड़ गया हो। पिछले साल आरटीआइ में सामने आई जानकारी के मुताबिक बीते दस वर्षों में सरकारी गोदामों में 7. 80 लाख क्विंटल अनाज खराब हो गया है। एक सर्वे बताता है कि देश में 10 लाख टन प्याज और 22 लाख टन टमाटर हर साल खेत से बाजार पहुंचते-पहुंचते रास्ते में ही खराब हो जाते हैं। यह असंवेदनशीलता और प्रशासनिक लापरवाही की पराकाष्ठा ही कही जा सकती है कि भुखमरी के आंकड़ों की फेहरिस्त में दिखने वाले देश में सरकारी गोदामों में रखा अनाज बर्बाद हो जाए। हमारे यहां आज भी हर दिन करीब 20 करोड़ लोग भूखे रह जाते हैं। भरपेट भोजन न मिलने से किसी की जान जाने के समाचार आते रहते हैं। इतना ही नहीं देश में ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं जिन्हें जरूरत से कम भोजन में संतोष करना पड़ता है। यही वजह है कि कुछ समय पहले खुली जगहों और गोदामों में भारी मात्रा में अनाज सड़ने की खबरों के बाद उच्चतम न्यायालय कह चुका है कि सरकार को खुले में अनाज को सड़ने के लिए छोड़ने के बजाय इसे गरीबों में बांट देना चाहिए। यकीनन यह एक सख्त आदेशात्मक सुझाव था। बावजूद हालात जस के तस हैं। अफसोस कि आजादी के बाद से सरकारें आती जाती रहीं, पर अनाज की बर्बादी को रोकने के प्रति उदासीन रवैया ही अपनाया गया है।

जीवन के लिए सबसे जरूरी चीजों में से एक भोजन है। बावजूद इसके खाद्य पदार्थों के भंडारण से लेकर उन्हें समय पर बाजार पहुंचाने तक, लचरता ही देखने को मिलती है। हर साल देखने में आता है कि सरकार न तो किसानों को फसल का समुचित मूल्य दे पाती है और न ही उपज का सही ढंग से संरक्षण कर पाती है। खाद्य पदार्थों को सुरक्षित रखने के मामले में कुप्रबंधन के हालात ऐसे हैं कि कई बार बंपर उत्पादन के बाद भी बाजार में अनाज, फल या सब्जियां महंगी बिकती हैं। दुखद है कि भंडारण की सही व्यवस्था न होने से किसानों को भी फसल का उचित मूल्य नहीं मिलता। ऐसे में यह बात समझ से परे है कि बरसों तक खाद्यान्नों का घोर अभाव झेलने वाले जिस देश ने कड़ी मेहनत के बाद खाद्यान्न उत्पादन में न केवल आत्मनिर्भरता प्राप्त की, बल्कि खाद्यान्न निर्यातक देश भी बना, उसी देश में आज भी अनाज के संरक्षण की सही व्यवस्था नहीं है। देश के नीति-निर्माताओं के लिए यह बड़ा सवाल है कि भंडारण की सही व्यवस्था को लेकर यह ढुलमुल रवैया क्यों है? भूख और महंगाई से जूझ रहे देश में खाद्य पदार्थों की बर्बादी कब तक होती रहेगी?

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

भाजपा की कोशिश

सत्ता के लिए विचारधारा को तिलांजलि शीर्षक से लिखे अपने लेख में डॉ. एके वर्मा ने महाराष्ट्र में शिवसेना-राकांपा-कांग्रेस गठबंधन के सैद्धांतिक विरोधाभासों की चर्चा की है। यह सही है कि 1966 में शिवसेना की नींव रखने वाले बालासाहेब ठाकरे ने कभी भी मराठी मानुष, हिंदू अस्मिता और कांग्रेस के विरोध के सवालों पर समझौता नहीं किया। उनकी इसी आक्रामकता और स्पष्टवादी दृष्टिकोण ने शिवसेना के लिए कोर वोटरों का एक ऐसा वर्ग तैयार कर दिया, जो उनकी एक आवाज पर अपनी जान छिड़कता था, लेकिन उन्हीं के पुत्र उद्धव ने आज सत्ता के लिए कांग्रेस और उसकी सहयोगी राकांपा से समझौता करने में गुरेज नहीं किया। जहां तक भाजपा का प्रश्न है तो उसने सत्ता खोई है, अपने वोटरों की सद्भावना नहीं। कहा यह जा रहा है कि उसने भी सत्ता के लिए अधीरता दिखलाई, किंतु यदि वह अपनी इसी मुहिम में सफल रहती तो इसे ही उसका मास्टर स्ट्रोक कहा जाता। वैसे भी भाजपा ने मोदी और शाह के नेतृत्व में सफलता की नई ऊंचाइयों को इसलिए छुआ है, क्योंकि अब उसने अपनी राजनीति में विचारधारा और महत्वाकांक्षा का बेहतर समिश्रण करना सीख लिया है। जहां उसने अनुच्छेद-370, राम मंदिर, तीन तलाक और एनआरसी जैसे मुद्दों पर विचारधारा से कोई समझौता नहीं किया, वहीं कई राज्यों में सत्ता में आने के लिए किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार दिखी। काम कितना ही मुश्किल क्यों न हो, कोशिश जरूर करो। इसी लक्ष्य के साथ भाजपा नेतृत्व ने महाराष्ट्र में कोशिश की। यह ठीक है कि वहां बाजी पलट गई, लेकिन इस एक हार से न भाजपा की उम्मीदें खत्म होंगी और न ही कोशिशें। प्रसंगवश मिर्जा अजीम बेग की एक शायरी को यहां उद्धृत कर रहा हूं- 'गिरते हैं शहसवार ही मैदान-ए-जंग में, वो शख्स क्या गिरे जो घुटनों के बल चले।'

चंदन कर्ण, देवघर

आसान भाषा में एफआइआर

दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि थानों में प्रथम सूचना रिपोर्ट यानी एफआइआर आसान भाषा में दर्ज होनी चाहिए। यद्यपि उत्तर प्रदेश में यह कार्य बरसों से हो रहा है। वस्तुतः अंग्रेजों के कार्यकाल से पुलिस विभाग में उर्दू एवं फारसी शब्दों की प्रधानता रही। जामातलाशी, मुचलका ,अहकाम, मजरूब, मुजामत, बयान, तहरीर, चस्पा, तरमीम जैसे शब्दों का आज भी बहुतायत से प्रयोग हो रहा है, जिनका भावार्थ ढूंढना आज के नव युवकों के लिए टेढ़ी खीर है। आज समय की यही मांग है कि आसान सर्वस्पर्शी व सर्वग्राही भाषा का प्रयोग हो। वर्ष 2011 में क्राइम एंड क्रिमिनल ट्रैकिंग सिस्टम की अवधारणा के बाद थानों में कंप्यूटरीकरण बढ़ चुका है। पहले उर्दू अनुवादकों की भर्ती होती थी, जो 1995 में अंतिम बार हुई। आज अच्छे पढ़े-लिखे युवा पुलिस में चयनित होते हैं, जिनके लिए ये शब्द क्लिष्ट एवं गूढ़ ही हैं। रोजमर्रा के ऑफिस कार्यों में ऐसी भाषा ही प्रयोग में लाई जानी चाहिए जो सबको आसानी से समझ आ सके। इसमें उर्दू, अंग्रेजी के भी प्रचलित शब्द लिए जाने चाहिए तथा क्लिष्ट शब्दों से भी दूरी बनाई जानी चाहिए, क्योंकि यह कार्रवाई जनसाधारण के लिए होती है। दरअसल इन गूढ़ उर्दू व फारसी शब्दों का अब तक प्रयोग इसलिए होता रहा, क्योंकि जल्दी कोई परिवर्तन नहीं करना चाहता है। जैसा चल रहा है, उसी में समय पास कर लेते हैं। अब कोर्ट की टिप्पणी आ गई तो सरकारों को इसे गंभीरता से लेना चाहिए और बिना देरी के आसान भाषा में लिखा-पढ़ी का कार्य शुरू कराना चाहिए।

डॉ. मनोज कुमार शर्मा, स्याना

भ्रष्ट अफसर

आयकर विभाग से फिर हाल ही में 21 अफसरों को जबरन सेवानिवृत्त कर दिया गया। कारण इन पर भ्रष्टाचार के कई मामले दर्ज हैं। इनको मिलाकर इस साल लगभग 85 अधिकारियों को जबरन सेवानिवृत्त कर दिया गया। सब पर भ्रष्टाचार के कई संगीन मामले दर्ज थे। केंद्र सरकार ने हमेशा भ्रष्टाचार के विरुद्ध कार्य किया और प्रधानमंत्री मोदी ने इन्हें चेतावनी भी दी थी। प्रधानमंत्री ने अपने इस सत्र की शुरुआत में ही कहा था कि सरकार उनके खिलाफ कार्रवाई करने जा रही है जिन्होंने इसे बढ़ावा दिया है। भ्रष्टाचार पर रोक के लिए इससे भी सख्त कार्रवाई की जरूरत है।

raialokk97@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।